आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की आलोचना-दृष्टि

डॉ० केदारनाथ सिंह
प्राध्यापक, हिन्दी विभाग
शेरशाह महाविद्यालय, सासाराम

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी शुक्ल जी के अनन्तर हिन्दी साहित्य में अपना एक विशिष्ट स्थान रखते हैं। द्विवेदीजी के चिन्तन के मूल में संस्कृत, पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश और अवहट्ठ का विशाल वाङ्मय पृष्ठभूमि का कार्य करता है। वे इसका गहन मंथन करते हैं और उनमें निहित भारतीय चिन्तन को आत्मसात् कर उसकी सांस्कृतिक सुगन्ध और ऐतिहासिक चेतना को हिन्दी आलोचना में समग्रतः उतार देते हैं। इन दोनों पाथेयों के साथ अपने चिन्तन यात्रा को विश्वसनीय और सशक्त बनाने के लिए समाजशास्त्रीय पद्धति भी अपनाते हैं। विभिन्न युगों की सामाजिक चेतना के साथ सांस्कृतिक और ऐतिहासिक चेतना का तालमेल बैठाते हुए अपनी सारस्वत यात्रा को वे सम्पन्न करते हैं। इनकी आलोचना शोध क्षेत्र की स्थापनाओं से सुगंधित है।

द्विवेदी जी शोधी ही नहीं आलोचक और सर्जक भी हैं। उनकी आलोचना सैद्धान्तिक भी है और व्यावहारिक भी। तीनों रूप इनमें प्रकट होते हैं। द्विवेदी जी का लक्ष्य संस्कृति या मानव मात्र के अविरोधी, धर्म मानवता के घटक उपकरणों (प्रेम, दया, उपकार, करुणा, सहानुभूति) आदि को मानते हैं। अतः इन्हें सांस्कृतिक एवं मानवतावादी आलोचक कहा जाता है। वे रवीन्द्र और अरविन्द की स्थापनाओं में आस्था रखते हैं। चेतना को चरमतत्त्व मानना और समस्त सृष्टि को चरमतत्त्व में निहित अनेक सम्भावनाओं में पूर्ण मूर्त रूप में मानना द्विवेदी जी की जीवन दृष्टि है। आदिकाल को समझने में शुक्ल जी साम्प्रदायिक साहित्य का त्याग करते हैं, किन्तु द्विवेदी जी उसका उपयोग करते हैं। लेकिन, ऐसा करते हुए भी वे आत्मवाद के अतिवाद से बचते हैं, संतुलित रहते हैं। उनके चिन्तन में कहीं विकृति नहीं आती। शुक्ल जी युगीन परिस्थितियों का साहित्य प्रतिबिंबित चितवृत्ति के साथ कार्य-कारण भाव निरूपित करते हैं। द्विवेदी जी उसे समाज प्रवाह के माध्यम से विकसित सांस्कृतिक चेतना को ऐतिहासिक क्रम में निर्धारित करते हैं। आचार्य द्विवेदी आत्मवाद का पक्ष लेकर आधुनिक चेतना को मूर्त्त होते देखना चाहते हैं। वे साहित्य में यथार्थ चित्रण के पक्षधर नहीं हैं, जो पशुता को उरेहता है, अपितु उस रूप को महत्त्व देते हैं जिसमें मनुष्यता उद्दीप्त होती हो। इसीलिए वे रामविलास शर्मा आदि मार्क्सवादी चिन्तकों से भी अलग जा पड़ते हैं क्योंकि जड़वादी दर्शन का उनके यहाँ कोई महत्व नहीं है।

द्विवेदी जी सौन्दर्य को सामंजस्य के रूप में रेखांकित करते हैं। उनके अनुसार इच्छा, ज्ञान और क्रिया के सहज योग से विशुद्ध चैतन्य गोचर जगत में अभिव्यक्ति हो रहा है। द्विवेदी जी ने व्यक्ति चित्र की इच्छा को ही सौन्दर्य माना है। समस्त इच्छा विश्वव्यापिनी मंगल की इच्छा के अनुकूल होने पर ही, व्यक्तिगत इच्छा सार्थक होती है। समस्त इच्छा चेतना धर्म है। जो बात चेतन धर्म के अनुकूल है वही सुन्दर है। व्यक्ति-व्यक्ति जितने अंश में विरोधी हैं, वह जड़ता का प्रकाश है और जितने में सामंजस्य है वह चेतना की अभिव्यक्ति है। इस प्रकार सामंजस्य ही सौन्दर्य है और असामंजस्य असौन्दर्य। द्विवेदी जी इस दृष्टि से साहित्य की सर्जना और मंथन में प्रवृत्त होते हैं। वे चेतना की जययात्रा के रूप में सब कुछ देखते हैं और मनुष्यता को ही सर्वोच्च सांस्कृतिक उपलब्धि के रूप में स्वीकार करते हैं।